प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

(इंद्र की राजसभा। एक ऊँचे सिंहासन पर देवराज इंद्र बैठे हैं। उनके मस्तक पर नील मणियों से विरचित छत्र तना है। भुजमूलों में स्वर्णिम केयूर-पट्ट शोभित हैं, अप्सरायें चँवर डुला रही हैं, दोनों ओर पंक्तिबद्ध देवगण बैठे हैं। उर्वशी नृत्य करती हुई गाती है।)

यदि स्वर्ग कहीं है त्रिभुवन में तो वह मेरे ही उर में है
कोमल मृणाल-से बाहुबंध
उड़ती अलकें ज्यों मधुप अंध
लहराती मेरे अंगों में
यौवन की मांसल स्वस्थ गंध
नंदन जैसे सुरपुर में है

मैं लिये रूप की निर्मलता
स्मित अधर, विनत भ्रू-कल्पलता
मंथित जलनिधि से उगी व्योम पर
जलद वधू-सी नृत्यरता
बिजली जिसके नूपुर में है

अंतर में सपनों की क्रीड़ा
मैं यौवन की शास्वत पीड़ा
जब भी जय की अभिलाषा ने
पौरुष के तारों को मीड़ा
कंपन मेरे ही सुर में है
यदि स्वर्ग कहीं है त्रिभुवन में तो वह मेरे ही उर में है

(नृत्य समाप्त होने पर उर्वशी एक ओर खड़ी हो जाती है)

इंद्र— लाखों बार मक्षिका धरती रवि का चक्कर काट चुकी—
मधु के हित, मधुसंग्रह करके बार सहस्त्रों बाँट चुकी

तारा के चुंबन से ऊबे जलधि-सुता की ओर सकुच
चक्कर लाख लगा आये शशि, यद्यपि सके न पास पहुँच
कलियों का आलिंगन करते मरुतदेव मलयाचल से
कोटि-कोटि आवर्त भर चुके भू-नभलोक-तलातल से
नहीं शतक्रतु कहलाने का मिला किसीको श्रेय अभी
तत्त्वों के बल से है दैवी शासन-चक्र अजेय अभी
मधुर ऊर्वशी के अधरों सी अरुण सोम की हाला में
भाग हमीं पाते हैं पहले मंत्र-मुखर मखशाला में
हमीं सृष्टि के आदि रत्न हैं ऋषियों की पूजा के योग्य
रंभा की त्रिवली-से तीनों लोक हमारे ही उपभोग्य
साहस किसमें आज हमारी सहे प्रलय सी चितवन वक्र
दो ही अस्त्र अमोघ कहाते, यह दृढ़ वज्र, सुदर्शन चक्र

(वज्र की ओर निर्देश करके)

दैत्यों के अभियान सहस्रों कैसे विफल हुए लाखों
देख चुके तुम सभी अकल्पित बल इसका अपनी आँखों
बिंबाफल से बाल-तरणि को ग्रसकर फिरते भू की ओर
इसी वज्र से ताड़ित कपि ने उगल दिया ज्यों जलता कौर
प्रलय-घनों से भीम पंखयुत, शिलाखंड-वर्षण में व्यस्त
इसने सकुल अपंख कर दिये आसुमेरु गिरि-गरुड़ समस्त

(देवगुरु वृहस्पति का प्रवेश)

वृहस्पति—गर्व न करो, देवराज! बल की परीक्षा का समय आ गया है।
कुशासनस्थ दिव्य नेत्रों से सहसा मैंने देखा आज
बलिपुर में उन्मत्त दैत्यगण सजा रहे थे रण का साज
मृत्युंजय भार्गव मंत्रों से विजय-श्री का कर आह्वान
श्रद्धानत बलि के कर उसको कन्या-सी करता था दान
कोटि-कोटि भीमांग असुर से रणयात्रा को उद्यत-से
कज्जल मेघों की आँधी ज्यों रुकी हुई हो पर्वत से

बिजली के गिरने से पहले हो जाता जो नभ का रंग
वैसा ही कुछ खिँचा, शांत भी तिर्यक था बलि का भ्रू-भंग

(चर का प्रवेश)

चर— देवराज की जय हो। बलि के नायकत्व में दानवों की विशाल यंत्रसज्ज रणवाहिनी अमरावती की ओर तेजी से बढ़ी आ रही है।

वृहस्पति—इंद्र! सावधान हो जाओ। शत्रु ने यदि वैतरणी नदी का संतरण कर लिया तो कुछ करते-धरते नहीं बनेगा। मेरे ज्योतिष-विचार के अनुसार...

(दूसरे चर का प्रवेश)

दूसरा चर— देवराज की जय हो। शत्रु ने विद्युत-गति से वैतरणी नदी का संतरण कर लिया है।

वृहस्पति— सर्वनाश!

(इंद्र उठ खड़े होते हैं। अन्य सभासद भी खड़े हो जाते हैं)

इंद्र— तपो आज आदित्य बारहों! प्रलय-घटायें घुमड़ रहीं उठ पानी में आज लगादो, जल में डूबी जले मही धरो दिशाओं को दिग्पालो! बढ़ो युगल अश्विनी-कुमार! आठों वसु, ग्यारहों रुद्रगण, रण को हो जाओ तैयार काल-महिष पर बैठ भयंकर शीत मृत्यु का दंड लिये त्रिभुवन के भक्षक यम! देखो, आज न कोई असुर जिये गिरि समूल उत्राटन करके उड़ा पंख नव के छल से झड़, झंडाभिधेय उंचासों पवन! बहो नभ-जल-थल से आज वारुणी-सी उत्तेजक वरुणानी से बाँह छुड़ा स्वतंत्रता-हित उठो उदधिपति! भूल पुरातन का पचड़ा जीत गये यदि असुर एक क्या लाखों सुर-वधुओं से भी उनकी उर-ज्वाला न बुझेगी यज्ञ-कुंड-सी घृतसेवी

और बँधे देखोगे तुम, धिक्! नहीं, जुटी बलि-पशुओं-सी
बलि की सेना की बलि दे दो स्वाहा-ध्वनि कर ऋषियों-सी
सागर से जल पीकर जैसे मेघों का उठता है झुंड
गज-अर्गला-मुक्त हो वैसे चलें बहाते मद के कुंड
वज्र-घोष-रथ देव-महारथियों के जय-अभियान चलें
भूमि चले, नभ चले, चराचर चलें, अचल पाषाण चलें
उठो अमर देवत्व! प्रजापति! सृष्टि-नियंता! अमर विधान!
जागो, हे स्वर्गों के वासी! महाप्रलय के प्रात-समान

(पटाक्षेप)